RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-16, अंक-1, दिसम्बर 2022 जनवरी फरवरी 2023

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रास्ो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-16 अंक - 1 दिसम्बर-2022, जनवरी-फरवरी-2023

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** - प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** - प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** - पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** - पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** - सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** - पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** - आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** - पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

वैदिक युग में सैन्य व्यवस्था

डॉ. मुकेश शर्मा
सहायक आचार्य (समाज विज्ञान विभाग)
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

वैदिक युग में समाज की संरचना और राजनीतिक जीवन के भीतर सैन्य व्यवस्था का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। बाहरी आक्रमणों से रक्षा तथा आवश्यक होने पर शत्रु का विनाश करने के लिए एक संगठित और सक्षम सेना की आवश्यकता सर्वत्र अनुभव की जाती थी। इसी कारण वेदों में सैन्य संगठन के विभिन्न अंगों, पदों और उनके कार्यों पर विस्तृत प्रकाश मिलता है। यह द्योतक है कि वैदिक आर्य केवल आध्यात्मिक चिंतन तक सीमित नहीं थे, बल्कि एक सशक्त एवं व्यवस्थित सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था भी बनाए हुए थे।

वेदों में सामान्यत: सैनिक के लिए 'मरुत' तथा सेनापति के लिए 'रुद्र' शब्दों का उल्लेख मिलता है। आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ने 'वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त' में 'मरुत' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है कि 'म्रियते मारयति वा स मरुत' अर्थात् जो स्वयं मरने को तैयार रहता है और आवश्यकता पड़ने पर शत्रु को मारता भी है, वही मरुत कहलाता है। यह व्याख्या सैनिक के स्वभाव और उसके कर्तव्य को अत्यन्त सटीक रूप से निरूपित करती है। वैदिक काल में सैनिक को केवल युद्धकर्मी ही नहीं माना गया, बल्कि वह राष्ट्र की रक्षा, जन-सुरक्षा और सामाजिक प्रतिष्ठा का आधार माना जाता था। इसीलिए 'मरुत' का प्रयोग केवल साधारण योद्धा के लिए नहीं, बल्कि एक वीर, प्रशिक्षित और अनुशासित सैन्य पुरुष के रूप में हुआ है।

सेनापति के संदर्भ में 'रुद्र' शब्द का प्रयोग एक रोचक ऐतिहासिक-धार्मिक विकास को भी दर्शाता है। आज सामान्यत: 'रुद्र' का पर्याय 'शंकर' अथवा महादेव लिया जाता है, किंतु वेदों की मूल स्थिति में रुद्र एक सैन्याग्रणी, एक सेनानायक के रूप में प्रकट होता है। वेदों के अनेक स्थलों पर मरुतों को ही रुद्र कहा गया है, जिससे स्पष्ट है कि रुद्र कोई पृथक देवता स्वरूप नहीं, बल्कि सैनिक समुदाय का प्रमुख था। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद और यजुर्वेद में रुद्र का जो स्वतंत्र वर्णन मिलता है, वह भी एक वीर सेनापति का ही परिचायक है– उसके पास धनुष-बाण है (ऋग्वेद 7.46.1), उसके पास तुणीर है (यजुर्वेद 16.13), उसके हाथ में खड्ग है (यजुर्वेद 16.2) और उसके सिर पर पगड़ी है (यजुर्वेद 16.22)। यह वेशभूषा पर्वतराज कैलाश के योगी, ध्यानमग्न शिव के स्वरूप से मेल नहीं खाती, परन्तु युद्धभूमि में सेना का नेतृत्व करने वाले एक वीर सेनानायक के रूप से पूर्णत: सामंजस्य रखती है।

यदि बाद की धार्मिक परंपराओं में रुद्र का संबंध शंकर से स्थापित हुआ तो यह सांस्कृतिक विकास, लोकविश्वास और प्रतीकात्मक समानता का परिणाम प्रतीत होता है। संभवत: वैदिक काल का साहसी, शक्तिशाली सेनापति ही आगे चलकर पुराणों में एक महादेव, एक शक्तिपुंज देवता के रूप में पूजित होने

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

लगा। दूसरी ओर यह भी माना जा सकता है कि पूर्ववर्ती रुद्र-स्वरूप को ही बाद की परंपराओं ने शिव के साथ मिश्रित कर दिया, जिससे रुद्र-शिव का एकीकृत रूप विकसित हुआ।

वेदों में रुद्र की सेनाओं का वर्णन भी उसके सैन्य-प्रधान स्वरूप को सिद्ध करता है। अथर्ववेद में उसकी अनेक सेनाओं को नमस्कार किया गया है (11.2.31)। यजुर्वेद में उसे ऐसी सेनाओं का स्वामी बताया गया है जो शत्रुओं का सर्वदिशात्मक विनाश करती हैं (16.20)। ऋग्वेद में प्रार्थना है कि रुद्र की सेनाएँ मित्रों को न छुएँ, बल्कि केवल उसके शत्रुओं को ही काट डालें (2.33.11)। यह वर्णन दर्शाता है कि वैदिक सेना केवल अनुशासित सैनिकों का समूह नहीं बल्कि रणनीतिक रूप से संगठित, प्रशिक्षित और बहु-इकाईयों वाली एक सैन्य शक्ति थी, जिसके नेतृत्व में रुद्र जैसा वीर सेनानायक खड़ा होता था।

वैदिक युग में सेना केवल बाह्य आक्रमणों से रक्षा का साधन नहीं थी, बल्कि समाज की सुरक्षा और राज्य के स्थायित्व के लिए इसका संगठन अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता था। वेदों में सैनिकों की नियुक्ति हेतु उनके शारीरिक, मानसिक और नैतिक गुणों पर विशेष ध्यान दिया गया है। कहा गया है कि सैनिक ऐसे व्यक्तियों में से चुने जाने चाहिए, जो साहसी और बलिष्ठ हों, लेकिन जिनके स्वभाव में उग्रता और अनुचित क्रोध का स्थान न हो। उनका साहस इतना प्रबल होना चाहिए कि कोई भी प्रतिकूल परिस्थिति उन्हें दबा न सके। इसके साथ ही उन्हें दानी, उदार और परोपकारी होना आवश्यक था, ताकि आवश्यकता पड़ने पर वे अपने प्राणों का भी त्याग कर सकें।

सैनिकों की योग्यता में शारीरिक कौशल और युद्ध-कौशल दोनों का सम्मिलन अत्यन्त आवश्यक था। वे अपने प्रतिद्वन्द्वी को भयभीत करने में सक्षम हों और शत्रु पर सर्प के समान तीव्र क्रोध उत्पन्न कर सकें। उनका शारीरिक विकास और व्यायाम नियमित होना आवश्यक था; उन्हें दौड़ने, क्रीड़ा-कूद में रुचि रखने और दृष्टि में तीव्रता हेतु प्रशिक्षण प्राप्त होना चाहिए। इसके साथ ही उनकी बुद्धिमत्ता, शिक्षा और मानवीय गुणों की प्राप्ति भी अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी गई थी।

वेदों में सैनिकों के सामाजिक और सामूहिक जीवन का भी उल्लेख मिलता है। सैनिकों को एक ही स्थान पर मिल-जुलकर रहना चाहिए, ताकि उनमें सामूहिकता और अनुशासन बना रहे। दैनिक सैनिक अभ्यास के अतिरिक्त, उनके लिए खेलकूद और मनोरंजन की पर्याप्त व्यवस्था रखी जानी चाहिए। यदा-कदा उन्हें जनसाधारण के कार्यक्रमों में सम्मिलित किया जाना चाहिए, ताकि सैनिक और जनता के बीच आत्मीयता और सामाजिक संवाद बना रहे।

सैनिकों के आहार पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। उनके भोजन में गाय का दूध, दही और मधु की अनुशंसा की गई है, जबकि माँस का सेवन निषिद्ध माना गया। स्वास्थ्य और चिकित्सा की दृष्टि से सैनिकों के लिए पृथक से अस्पताल की व्यवस्था की गई थी, जिसमें केवल रोगों के निदान ही नहीं, बल्कि कटे हुए अंगों को पुनः पूर्ववत् करने की शल्यक्रिया की सुविधा भी मौजूद थी, जैसा कि ऋग्वेद (8.20.26) में उल्लेख मिलता है। यह प्राचीन चिकित्सा विज्ञान की चमत्कारी प्रगति का प्रमाण है, और इसे अन्य प्राचीन साहित्य जैसे गणेश के मस्तक को पुनः स्थापित करने की कथा में भी देखा जा सकता है। वेदों में जल चिकित्सा का उल्लेख भी मिलता है (ऋग्वेद 2.33.7, 7.35.6 तथा अथर्ववेद 17.10.6), जो प्राचीन काल में सैन्य और जन स्वास्थ्य के लिए उन्नत चिकित्सा पद्धतियों की जानकारी प्रदान करता है।

वैदिक युग में सेना का संगठन अत्यन्त सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक था। वेदों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सेना का सबसे छोटा समूह दस सैनिकों का होना चाहिए, और इस समूह का नेतृत्व एक नायक

करता है। इसी तरह दस-दस के छोटे समूह मिलकर एक बड़ा समूह बनाते हैं, जिसका नेतृत्व एक महानायक करता है, जो दस समूहों के नायकों का भी अधिकारी होता है। इस प्रकार इस बड़े समूह में कुल 100 सैनिक, दस नायक और एक महानायक होते हैं। इस क्रम को आगे बढ़ाते हुए, सौ-सौ सैनिकों के दस समूह मिलकर एक और बड़ा समूह बनाते हैं, जिसका प्रभारी एक सेनापति होता है। इस समूह में कुल सैनिक एक हजार, नायक एक सौ, महानायक दस और एक सेनापति होता है। इस प्रकार आवश्यकता और उपलब्ध संसाधनों के अनुसार सेना अनेक समूहों को मिलाकर लाखों की संख्या तक पहुँच सकती थी, लेकिन इसका मूल आधार दस की संख्या पर ही टिका होता था। नायक, महानायक, सेनापति और प्रधान सेनापति इस दस की संख्या से अलग रहते थे, ताकि नेतृत्व की स्पष्टता बनी रहे।

वेदों में सैनिकों की वेशभूषा और पहचान पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। सैनिकों के लिए प्रभावशाली और विशिष्ट वेशभूषा का प्रयोग आवश्यक था, और अलग-अलग समूहों के लिए विशिष्ट नामकरण किया गया। अनुशासन पर भी जोर दिया गया है, जो सैनिकों के संगठन और युद्धक्षमता की पहचान था। ऋग्वेद (5.87.6) में सैनिकों के अनुशासन और सामूहिक सौंदर्य की महिमा का उल्लेख है: 'हे सैनिकों! तुम्हारी महिमा अपार है, क्योंकि तुम सुन्दर दिखलायी देने वाले बन्धन में रहते हो।' इसके अतिरिक्त, समाज द्वारा सैनिकों को पर्याप्त सम्मान देने की परंपरा भी थी। यदि किसी व्यक्ति का पुत्र सेना में नियुक्त होता, तो वह अपने पुत्र को सम्मान देने हेतु पहले नमस्कार करता था, जैसा कि ऋग्वेद (2.33.12) में उल्लेख है।

युद्ध के समय सैनिकों को विशेष आकार और प्रकार में व्यवस्थित करने की परंपरा भी वैदिक काल में स्थापित थी। ये प्रारंभिक सैन्य व्यवस्था आगे चलकर महाभारत काल तक विकसित हुई और गरुड़ व्यूह, शकट व्यूह तथा चक्रव्यूह जैसी जटिल युद्ध-रचनाओं का रूप धारण कर गई। इन व्यूहों का प्रयोग युद्ध में रणनीतिक लाभ प्राप्त करने के लिए किया जाता था। उदाहरणत: अभिमन्यु का वध चक्रव्यूह में हुआ था, जबकि जयद्रथ को बचाने के लिए द्रोणाचार्य ने शकट व्यूह का निर्माण किया था। यह स्पष्ट करता है कि वैदिक सेना न केवल संगठनात्मक रूप से व्यवस्थित थी, बल्कि युद्ध-कौशल, रणनीति और नेतृत्व की दृष्टि से भी अत्यन्त विकसित थी।

वेदों में सेना को तीन प्रमुख अंगों में विभाजित किया गया है—थल, जल और नभ। थल सेना के तीन प्रकार बताए गए हैं—पैदल सेना, घुड़सवार सेना और रथारोही सेना। इन तीनों प्रकार के सैनिकों के प्रशिक्षण पर वेदों में विशेष जोर दिया गया है। घोड़ों के प्रशिक्षण और उनके युद्ध में प्रयोग का भी उल्लेख मिलता है। रथ में सामान्यत: घोड़े जोते जाते थे, लेकिन आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति का विचार है कि कुछ रथ बिना घोड़ों के भी केवल किसी विशेष ऊर्जा से चलाए जा सकते थे। यहाँ 'तेज' शब्द का अर्थ किसी प्रकार की शक्ति या ऊर्जा से है, जो विद्युत या सौर ऊर्जा जैसी आधुनिक अवधारणाओं से भी संबंधित हो सकती है।

ऋग्वेद में इसके लिए कई उदाहरण उद्धृत हैं। एक स्थान पर कहा गया है—'क्रीलं व शर्धो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम्' (ऋग्वेद 1.37.1), जिसका अर्थ है कि सैनिकों का क्रीड़ाशील बल रथ में शोभा पा रहा है, परंतु यह ऐसा बल है जो रथ में घोड़े का प्रयोग नहीं करता। इसी प्रकार, 'मारुतो गणस्त्वेष रथरू' (ऋग्वेद 5.61.13) में वर्णित है कि सैनिकों का यह समूह ऐसा है, जिसके रथ में तेज जुड़ता है। इसके अतिरिक्त, 'विद्युद्रथा मरुत ऋष्टिमन्त:' (ऋग्वेद 3.54.13) में ऐसे सैनिकों का उल्लेख है जिनके रथों में विद्युत का प्रयोग होता है, अर्थात् वे 'विद्युत-रथ' के स्वामी हैं।

वैदिक काल में विद्युत और अन्य उन्नत तकनीकों के प्रयोग की बात पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए। सामान्यत: यह माना जाता है कि प्राचीन भारत के वैदिक और पौराणिक काल में ज्ञान-विज्ञान की प्रगति आधुनिक काल की तुलना में कहीं अधिक थी। मध्यकाल में विभिन्न कारणों से इस विद्या का लोप हो गया और यह केवल कुछ विशिष्ट व्यक्तियों तक सीमित रह गई। संभवत: विदेशी आक्रमणों या सुरक्षा कारणों से इस ज्ञान का अधिक प्रचार नहीं किया गया, और आकस्मिक परिस्थितियाँ भी इसके लोप का कारण बनीं। इस प्रकार, वैदिक काल की सेना न केवल संगठन और अनुशासन में उत्कृष्ट थी, बल्कि इसमें तकनीकी प्रयोग और उन्नत यंत्र-शास्त्र का भी उल्लेख मिलता है, जो उस समय के ज्ञान और विज्ञान के स्तर को प्रमाणित करता है।

वैदिक काल में सेना का एक विशेष हिस्सा मुख्य सेना से पहले आगे बढ़ता था। इसका काम था मार्ग की जाँच करना और सेना के लिए किसी भी तरह की बाधाओं को दूर करना। इसे सेना की अग्रिम इकाई कहा जा सकता है। इसके अलावा, सेना में कुत्तों का भी प्रयोग होता था, जो निगरानी और सुरक्षा के कार्य में उपयोग किए जाते थे, जैसा कि यजुर्वेद और अथर्ववेद में उल्लेख मिलता है।

वेदों में जल सेना का भी उल्लेख है, जो पानी में तेजी से संचालन करने में सक्षम थी। इसे समुद्र और नदियों में रणनीतिक रूप से कार्य करने वाली एक विशेष इकाई के रूप में दर्शाया गया है। इसका महत्व इतना था कि यह सेना के संचालन में दूरी और बाधाओं को दूर करने में सक्षम थी। जल सेना की गति और ताकत को ऐसे वर्णित किया गया है कि सैनिक पूरी भूमि पर नजर रख सकते थे और पूर्व से पश्चिम तक जल मार्गों के माध्यम से तेज़ी से जा सकते थे।

जल सेना में पनडुब्बियों का भी उल्लेख है, जिन्हें उस समय 'शुन्ध्यु' या 'मद्गु' कहा जाता था। 'मद्गु' का अर्थ उस पक्षी से है जो पानी में डुबकी लगा कर लंबे समय तक पानी के भीतर रह सकता है। इसका मतलब यह है कि वैदिक काल में सैनिक कभी छिपकर गुप्त रूप से संचालन करते थे और कभी अपनी ताकत और ऊर्जा से बड़े कार्य करते थे। जैसे वे अपने रथों की शक्ति से पर्वतों को तोड़ सकते थे।

वेदों का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि वैदिक युग में वायुसेना की कल्पना केवल प्रतीकात्मक नहीं थी, बल्कि उस समय आकाश-मार्ग से चलने वाले वाहनों की धारणा व्यापक रूप में विद्यमान थी। ऋग्वेद में ऐसे वायुयानों का बार-बार उल्लेख मिलता है, जो यह दर्शाता है कि उस काल में आकाश में उड़ने वाले यानों की कल्पना सुविकसित थी। इतना ही नहीं, उन यानों का निर्माण करने वाले कुशल शिल्पियों का भी ऋग्वेद में वर्णन मिलता है, जिससे यह संकेत मिलता है कि उस समय तकनीकी ज्ञान को भी महत्त्व प्राप्त था।

इन वायुयानों से युक्त सैनिकों का वर्णन अत्यंत रोचक है। वे आकाशमार्ग से विचरण करते हैं और उनकी गति इतनी तीव्र मानी गई है कि उन पर धूल तक नहीं जमती। वेदों में यह भी कहा गया है कि ऐसे सैनिकों को आकाश में शत्रु प्राप्त नहीं कर सकता, अर्थात् वे अत्यंत सुरक्षित, तीव्रगामी और अप्राप्य माने गए थे। ऋचाएँ यह भी बताती हैं कि उनकी शक्ति इतनी थी कि वे आकाश को अपने पराक्रम से मानो 'नाप' लेते हों। सैनिकों की आवाजें भी महान् आकाश में गूँजती हुई बताई गई हैं। यह सब वर्णन मिलकर उस समय की कल्पना-शक्ति और सामरिक दृष्टि का सुंदर चित्र खींचते हैं।

अथर्ववेद में उन शत्रुओं का भी उल्लेख मिलता है जो आकाश में स्थित हैं— यह दर्शाता है कि वैदिक सैन्य-चिन्तन में थल, जल और नभ— तीनों ही स्तर रणनीति का अंग थे। सेनापति को विशेष रूप

से उन आकाशीय शत्रुओं पर ध्यान रखने की सलाह दी गई है, जिससे इस सैन्य व्यवस्था की त्रिस्तरीय संरचना का बोध होता है।

वायुसेना के साथ-साथ वेदों में शस्त्रों का भी अत्यंत विस्तृत वर्णन है। धनुष-बाण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माने गए हैं। अनेक प्रकार के धनुष थे, जिनमें से कुछ एक साथ सौ या उससे अधिक तीर छोड़ने में सक्षम बताए गए हैं। इससे ऐसा अनुमान होता है कि तीरों या बाणों में कोई युक्ति रही होगी, जिससे वे हवा में फैलकर अनेक दिशाओं में जा सकते थे— संभवत: यह बहुविस्फोटक अथवा विभाजित होने वाले तीरों जैसा कोई विचार रहा होगा।

धुआँ उत्पन्न करने वाले, रास्ता रोकने वाले, तथा शत्रु को भ्रमित करने वाले तीरों का भी उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त तलवारों की अनेक जातियाँ भी निर्मित की जाती थीं। निकट युद्ध में परशु या कुल्हाड़ी का प्रयोग व्यापक था।

शस्त्रों में सबसे अधिक महत्त्व 'वज्र' को दिया गया है, जो विशेष रूप से इन्द्र का अस्त्र माना गया है। वेदों में इसका वर्णन ऐसा मिलता है कि वह लोहे या सोने से निर्मित होता था और उसमें से प्रकार-प्रकार की छुरियाँ अथवा अन्य धारदार उपकरण निकलकर शत्रु को हानि पहुँचाते थे। इसे फेंककर वार किया जाता था और यह चारों ओर प्रहार करने में समर्थ माना गया है। इससे विद्वान अनुमान लगाते हैं कि वह आधुनिक विस्फोटक या बम जैसी किसी अवधारणा से मेल खाता हो सकता है। एक अन्य अस्त्र 'तामसास्त्र' था, जिसका उपयोग शत्रुओं के बीच धुआँ और अँधेरा फैलाने के लिए किया जाता था— यह आधुनिक स्मोक-बम के समान प्रतीत होता है। इसी प्रकार 'सम्मोहनास्त्र' शत्रु को मूर्च्छित करने के लिए प्रयुक्त होने का वर्णन मिलता है। 'पूतिकाल' नामक अस्त्र शत्रु के पास तीव्र दुर्गन्ध फैलाकर उसे विचलित या कमजोर कर देता था।

युद्ध के वातावरण को जोशपूर्ण बनाने और सैनिकों के मनोबल को बढ़ाने के लिए दुन्दुभि सहित अनेक रणवाद्यों का भी प्रयोग होता था। यह केवल सैन्य शक्ति ही नहीं, बल्कि युद्ध-प्रबंधन और मनोवैज्ञानिक रणनीति का भी महत्त्वपूर्ण भाग था।

वेदों में अनेक ऐसे हथियारों का उल्लेख मिलता है जिनका नाम तो मिलता है, पर उनका रूप स्पष्ट नहीं है। 'वाशी' नामक अस्त्र को सायणाचार्य शरीर को छीलने वाला बताते हैं, पर उसका स्वरूप अनुमान ही है। 'ऋष्टि' को वे छुरी मानते हैं, जबकि आचार्य प्रियव्रत इसे विद्युत से चलने वाला किसी विशेष प्रकार का अस्त्र बताते हैं। इसी प्रकार पर्जन्यास्त्र और वारुणास्त्र जैसे हथियारों का भी उल्लेख है, जिनसे कृत्रिम वर्षा या आँधी उत्पन्न करने की क्षमता बताई गई है, पर उनके वास्तविक रूप का पता नहीं चलता।

अथर्ववेद में सीसे की गोली का भी उल्लेख मिलता है, जो दूर से शत्रु को मारने में सक्षम बताई गई है। इससे यह संकेत मिलता है कि सम्भवत: प्राचीन काल में बन्दूक जैसी कोई नलीदार युक्ति भी प्रयोग में लाई जाती रही होगी। कुछ ऋचाओं से यह भी ज्ञात होता है कि रोग फैलाने वाले अस्त्रों का उपयोग भी किया जाता था, क्योंकि उनमें शत्रु को रोगी करने और उसे दुर्बल करने का उल्लेख है।

युद्ध-नीति के विषय में वेदों में स्पष्ट और व्यावहारिक निर्देशन मिलता है। युद्ध के समय शत्रु पर दया न करने, उसकी शक्ति और योजनाओं का पूरा ज्ञान रखने, उसे डराने के लिए चालाकी अपनाने और उसे अपने क्षेत्र से दूर ही रोकने की बात कही गई है। शत्रु के नेताओं को पहले निष्क्रिय करने, उसके खजाने

और खाद्य–सामग्री को नष्ट करने, हथियारों को बिगाड़ देने और आवश्यकता पड़ने पर उसकी सामग्री में आग लगा देने को भी उचित माना गया है।

वेदों में युद्ध के दौरान सैनिकों के मनोबल को ऊँचा बनाए रखने पर विशेष बल दिया गया है। यह माना गया कि सैनिकों की बहादुरी की खुले रूप से सराहना की जानी चाहिए और छोटी–सी सफलता को भी बड़ी विजय की तरह प्रस्तुत करना चाहिए। इसी प्रकार शत्रु को सैनिकों के सामने साधारण और कमजोर दिखाना भी युद्ध–मनोविज्ञान का महत्वपूर्ण भाग था।

अथर्ववेद में वर्णन मिलता है कि उत्साहित सैनिक रथों पर आरूढ़ होकर अग्नि के समान तेज से शत्रुओं पर टूट पड़ते हैं। वे अपने हथियारों को पैना करते हैं और पूर्ण उत्साह के साथ युद्ध में कूदते हैं। यह भावना उन्हें युद्धभूमि में अजेय बना देती है। एक अन्य ऋचा में सेनापति अपने योद्धाओं को प्रेरित करता है कि वे हर दिशा में विजय प्राप्त करें और यह घोषणा करता है कि जीत तो केवल हमारी ही होगी, शत्रु पराजित होंगे, इस प्रकार का उत्साह सैनिकों में विजय का विश्वास भर देता है।

ऋग्वेद में शत्रुओं का मनोबल गिराने के लिए यह कहा गया है कि दस्यु शत्रु इतने दुर्बल हैं कि वे तो स्त्रियों को भी हथियार बनाकर लाते हैं; ऐसी कमजोर सेना हमारे सामने क्या टिकेगी? इसी तरह सैनिकों को यह स्मरण कराया जाता है कि उनकी भुजाएँ शक्तिशाली हैं, उनके बाण तीक्ष्ण हैं और उनके शस्त्र प्रबल हैं; इसलिए दुर्बल शत्रुओं को वे सरलता से परास्त कर देंगे।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि वैदिक सेना अत्यंत संगठित, बहुआयामी और तकनीकी रूप से सक्षम थी। सैनिकों में साहस, बुद्धिमत्ता, अनुशासन और मानवीय गुण होते थे। सेना थल, जल और नभ–तीनों स्तरों पर कार्यरत थी, जिसमें पैदल, घुड़सवार, रथ, जल रथ, पनडुब्बी और वायुयान शामिल थे। अस्त्रों में धनुष–बाण, तलवार, वज्र, तामसास्त्र और सम्मोहनास्त्र थे, जिनमें कुछ आधुनिक हथियारों जैसे विस्फोटक और स्मोक–बम के समान लगते हैं। युद्ध–नीति में सैनिकों का मनोबल बनाए रखना, शत्रु को डराना और उसकी ताकत व संसाधनों का ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण था।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *ऋग्वेद, आर.टी.एच. ग्रिफिथ का अनुवाद, बनारस, 1896*
2. *प्रो. योगेश चन्द्र शर्मा, भारतीय संस्कृति के आधार स्तम्भ, गीतांजलि प्रकाश, जयपुर, 2013*
3. *यजुर्वेद, उव्वट महिधर, भाष्य संहिता, मोतीलाल बनारसी दास, काशी, 1972*
4. *ऋग्वेद भाष्य भूमिका, महर्षि दयानन्द सरस्वती, वैदिक पुस्तकालय, अजमेर, 1983*
5. *यजुर्वेद भाष्य, महर्षि दयानन्द सरस्वती, वैदिक पुस्तकालय, अजमेर, 1984*
6. *महाभारत, (सभापर्व के विशेष संदर्भ में), आर.के. केशवमूर्ति, भारतीय विद्या भवन, बोम्बे, 1950*
7. *आर.सी. मजूमदार, द एज ऑफ एम्पीरियल यूनिटी, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1973*